Research Papers

सन्तोशमूलं हि सुखम्

मोहनलाल मेघवाल
व्याख्याता संस्कृत , रा.स्ना. महाविद्यालय प्रतापगढ़ (राज.)

प्रस्तावना :

भारतीय संस्कृति, विचारधारा एवं जीवन दर्शन में सन्तोषवृत्ति को बहुत महत्व दिया गया है। भारतीय नीतिकार सन्तोषवृत्ति को नैतिक जीवन पद्धति मानते है। मनु ने जीवन का वास्तविक सुख सन्तोष में ही निहित माना है।

सन्तोशमूलं हि सुखं दुःखमूलं विपर्ययः।[1]

अर्थात जब तक मानव जीवन यात्रा में सन्तोषवृत्ति का आश्रय नहीं लेता तब तक उसे सुख की अनुभूति नहीं होती। सन्तोषवृत्ति सुखों का मूल है और असन्तोष दुःखों का कारण है। मनुष्य की इच्छाओं और आकांक्षाओं का कभी अन्त नहीं होता। मनोवांछित योग्य सामग्री एकत्रित करने पर भोगाग्नि की ज्वाला उत्तरोत्तर बढ़ती ही है, शान्त नहीं होती। भोगाग्नि को शान्त करने के लिए संतोष वृत्ति रूपी पवित्र गंगा की अविरल धारा की आवश्यकता है, इसे भोग रूपी ईधन से शान्त नहीं किया जा सकता। संतोष वृत्ति धारण करने पर ही भोगाग्नि शान्त होगी। मानवीय एषणाऐ कभी पूर्ण नहीं होती। मानव इच्छाओं को जितना ही सन्तुष्ट या पूर्ण करना चाहता है वह उतनी ही अधिकाधिक बढ़ती जाती है। असन्तुष्ट व्यक्ति की स्थिति का प्रतिपादन करते हुए हितोपदेश – मित्रलाभ में नारायण पण्डित का कथन है –

धनलुब्धो ह्यसन्तुष्टोऽनियतात्माऽजितेन्द्रियः।
सर्वाएवापदस्तस्य यस्य तुष्टं न मानसम्।।[2]

अर्थात धनलोभी, असन्तुष्ट, अनियतात्मा, अजितेन्द्रिय तथा जिसका मन सन्तुष्ट नही है – उसे सारी विपत्तियॉ प्राप्त होती है। इसी सन्दर्भ में महाकवि माघ का यह कथन भी उपयुक्त और प्रांसगिक प्रतीत होता है –

तृप्तियोगः परेणापि महिम्ना न महात्मनाम्।
पूर्णचन्द्रोदयाकांक्षी दृष्टान्तोऽत्र महार्णवः।।[3]

अर्थात महानपुरूष अपनी गरिमा से कभी तृप्त नहीं होते जैसे पूर्ण चन्द्रोदय की इच्छा करने वाला समुद्र कभी तृप्त नही होता और न ही उसकी इच्छा कभी पूर्ण ही होती। इसीलिये भारतीय नीतिकारों का मानना है कि थोड़ी सी समृद्धि अथवा सम्पत्ति से सन्तुष्ट होकर प्राप्त सन्तोषवृत्ति से ही मानव सुख–शान्ति अनुभव कर सकता है, सुखेषणाओं, इच्छाओं, कामनाओं को बढ़ाने से नहीं।

अपनी सुखेषणाओं को, तृष्णाओं को, कामनाओं को रोकना या दबाना ही सन्तोषवृत्ति है। यदि इन्हें नहीं रोका या दबाया जाये तो मानव की बुद्धि लोभावरण से ढ़क जाती है। हितोपदेश – मित्रलाभ मे नारायण पंडित का कथन है कि लोभ से बुद्धि विचलित होती है, लोभ तृष्णा को बढ़ाता है, तृष्णा से पीड़ित पुरूष इहलोक और परलोक में दुःख प्राप्त करता है।

लोभेन बुद्धिश्चलति लोभोजनयते तृशाम्।
तृषार्तो दुःखमाप्नोति परत्रेह च मानवः।।

अन्यत्र **'तृष्णया मतिशछाद्यते'** (चाणक्य सूत्राणि 226) उक्ति प्राप्त होती है, इसीलिये तृष्णा, कामना को रोकना, दबाना ही संतोष है और यही सुख का आधार है।

वाल्मिकी रामायण में संतोषवृत्ति के नैतिक चित्रण के दो उदाहरण हमें इसे जीवन में धारण करने की प्रेरणा देते है। राजा दशरथ ने पुत्रेष्टि यज्ञ पूर्ण होने पर ऋत्विजों, ब्राह्मणों को बहुत सारी भूमि दक्षिणा स्वरूप दी परन्तु ब्राह्मणों ने राजा से कहा कि हम पृथ्वी का पालन करने में असमर्थ है, हमारा मुख्य कार्य है अध्ययन, अतः आप ही इसे धारण करते हुए इसका पालन करें।

न भूम्या कार्यमस्माकं नहि शक्ता स्म पालने।
रताः स्वाध्यायकरणे वयं नित्ययं हि 'भूमिप।।

इस प्रकार ब्राह्मणों ने सन्तोषवृत्ति का परिचय देते हुए राज्यभूमि को लौटा दिया और कुछ रत्न, मणि, गौ, सुवर्णोदि दक्षिणा के रूप में ग्रहण किया।

सन्तोषवृत्ति धारण करने का दूसरा उदाहरण वाल्मिकी रामायण में श्रीराम के चरित्र में मिलता है। पित्राज्ञा पालन करने हेतु जब राम वन जाने को तत्पर हुए तब राजा दशरथ ने उन्हें अपने साथ सेना और धन ले जाने को कहा। परन्तु राम ने संतोषवृत्ति धारण करते हुए कुछ भी साथ ले जाने से मना कर दिया –

व्यक्तभोगस्य मे राजन् वन वन्येन जीवतः।
किं कार्यमणुमात्रेण त्यक्त सङ्गस्य सर्वतः।।
यो हि दत्वा गजश्रेष्ठं वक्ष्यायां कुरूते मनः।
रज्जुस्नेहेन किं तस्य त्यजतः कुंजरोपमम्।।

राम ने केवल चीर वल्कल चाहते हुए सभी वस्तुओं का त्याग किया तथा संतोषवृत्ति धारण करने का नैतिक निर्देश दिया –

सर्वण्येवानुजानामि चीराण्येवनायन्तु मे।

सन्तुष्ट व्यक्ति की स्थिति का प्रतिपादन करते हुए नारायण पण्डित ने कहा है कि – जिस प्रकार कोई व्यक्ति अपने पैरों में जूते पहन ले तो उसके लिए यह सम्पूर्ण पृथिवी ही चमड़े से आवृत्त सी हो जाती है। उसका मार्ग निष्कंटक होता जाता है। उसी प्रकार जिसका मन सन्तुष्ट है, उसी के लिए सभी सम्पत्तियॉ होती है। तुष्ट मन वाला व्यक्ति ही सुख को प्राप्त कर सकता है।

सर्वाः सम्पत्तस्तस्य संतुष्टं यस्य मानसम्।
उपानद्गूढ़पादस्य ननु चर्मावृत्तैव भूः।।

अतः हमें भी इच्छाओं, कामनाओं का दास न बनते हुए जीवन में सन्तोषवृत्ति को धारण करना चाहिये। क्योंकि सन्तोष ही सब सुखों का मूल है।

सन्दर्भ सूची

1. *मनुस्मृति 4/12*
2. *हितोपदेश–मित्रलाभ – 135*
3. *शि.पा.वघ 2.31*
4. *हितोपदेश–मित्रलाभ 134*
5. *वा.रा.बा.का. 13/1/80*
6. *वा.रा.अयोध्या 33/2–3*
7. *हितोपदेश मित्रलाभ – 136*